फणीश्वर नाथ रेणु 14

जन्म : *4 मार्च, सन् 1921, औराही हिंगना (ज़िला पूर्णिया अब अररिया) बिहार में*

प्रमुख रचनाएँ : *मैला आँचल, परती परिकथा, दीर्घतपा, जुलूस, कितने चौराहे (उपन्यास); ठुमरी, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक, एक श्रावणी दोपहरी की धूप (कहानी-संग्रह); ऋणजल धनजल, वनतुलसी की गंध, श्रुत-अश्रुत पूर्व (संस्मरण); नेपाली क्रांति कथा (रिपोर्ताज); तथा रेणु रचनावली (पाँच खंडों में समग्र)*

निधन : *11 अप्रैल, सन् 1977 पटना में*

कुछ ऐसे चरित्र होते हैं जो प्राण-प्रतिष्ठा पाते ही अपने सिरजनहार के बँधे-बँधाए नियम-कानून, नीति अथवा फ़ार्मूले को तोड़कर बाहर निकल आते हैं और अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक गढ़ने लगते हैं।

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु का जीवन उतार-चढ़ावों एवं संघर्षों से भरा हुआ था। साहित्य के अलावा विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक आंदोलनों में भी उन्होंने सक्रिय भागीदारी की। उनकी यह भागीदारी एक ओर देश के निर्माण में सक्रिय रही तो दूसरी ओर रचनात्मक साहित्य को नया तेवर देने में सहायक रही।

सन् 1954 में उनका बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास ***मैला आँचल*** *प्रकाशित हुआ जिसने हिंदी उपन्यास को एक नयी दिशा दी। हिंदी जगत में आंचलिक उपन्यासों पर विमर्श* ***मैला आँचल*** *से ही प्रारंभ हुआ। आंचलिकता की अवधारणा ने कथा-साहित्य में गाँव की भाषा-संस्कृति और वहाँ के लोक जीवन को केंद्र में ला खड़ा किया। लोकगीत, लोकोक्ति, लोकसंस्कृति, लोकभाषा एवं लोकनायक की इस अवधारणा ने भारी-भरकम चीज़ एवं नायक की जगह अंचल को ही नायक बना डाला। उनकी रचनाओं में अंचल कच्चे और*

अनगढ़ रूप में ही आता है इसीलिए उनका यह अंचल एक तरफ़ शस्य-श्यामल है तो दूसरी तरफ़ धूल भरा और मैला भी। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब सारा विकास शहर-केंद्रित होता जा रहा था। ऐसे में रेणु ने अपनी रचनाओं से अंचल की समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान खींचा। उनकी रचनाएँ इस अवधारणा को भी पुष्ट करती हैं कि भाषा की सार्थकता बोली के साहचर्य में ही है।

फणीश्वर नाथ रेणु की प्रतिनिधि कहानियों में ***पहलवान की ढोलक*** *भी शामिल है। यह कहानी कथाकार रेणु की समस्त विशेषताओं को एक साथ अभिव्यक्त करती है। रेणु की लेखनी में अपने गाँव, अंचल एवं संस्कृति को सजीव करने की अद्‌भुत क्षमता है। ऐसा लगता है मानो हरेक पात्र वास्तविक जीवन ही जी रहा हो। पात्रों एवं परिवेश का इतना सच्चा चित्रण अत्यंत दुर्लभ है। रेणु वैसे गिने-चुने कथाकारों में से हैं जिन्होंने गद्य में भी संगीत पैदा कर दिया है, अन्यथा ढोलक की उठती-गिरती आवाज़ और पहलवान के क्रियाकलापों का ऐसा सामंजस्य दुर्लभ है।*

इन विशेषताओं के साथ रेणु की यह कहानी व्यवस्था के बदलने के साथ लोक-कला और इसके कलाकार के अप्रासंगिक हो जाने की कहानी है। राजा साहब की जगह नए राजकुमार का आकर जम जाना सिर्फ़ व्यक्तिगत सत्ता परिवर्तन नहीं; बल्कि ज़मीनी पुरानी व्यवस्था के पूरी तरह उलट जाने और उस पर सभ्यता के नाम पर एकदम नयी व्यवस्था के आरोपित हो जाने का प्रतीक है। यह 'भारत' पर 'इंडिया' के छा जाने की समस्या है, जो लुट्टन पहलवान को लोक-कलाकार के आसन से उठा कर पेट-भरने के लिए हाय-तौबा करने वाली निरीहता की भूमि पर पटक देती है। ऐसी स्थिति में गाँव की गरीबी पहलवानी जैसे शौक को क्या पालती? फिर भी, पहलवान जीवट ढोल के बोल में अपने आपको न सिर्फ़ जिलाए रखता है, बल्कि भूख व महामारी से दम तोड़ रहे गाँव को मौत से लड़ने की ताकत भी देते रहता है। कहानी के अंत में भूख-महामारी की शक्ल में आए मौत के षड्‌यंत्र जब अजेय लुट्टन की भरी-पूरी पहलवानी को फटे ढोल की पोल में बदल देते हैं, तो इस करुणा/त्रासदी में लुट्टन हमारे सामने कई सवाल छोड़ जाता है। वह पोल पुरानी व्यवस्था की है या नयी व्यवस्था की? क्या कला की प्रासंगिकता व्यवस्था की मुखापेक्षी है अथवा उसका कोई स्वतंत्र मूल्य भी है? मनुष्यता की साधना और जीवन-सौंदर्य के लिए लोक कलाओं को प्रासंगिक बनाए रखने हेतु हमारी क्या भूमिका हो सकती है? निश्चय ही यह पाठ हमारे मन में कई ऐसे प्रश्न छोड़ जाता है।

पहलवान की ढोलक

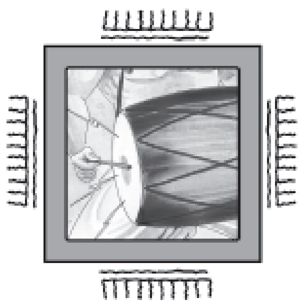

जाड़े का दिन। अमावस्या की रात–ठंडी और काली। मलेरिया और हैज़े से पीड़ित गाँव भयार्त्त शिशु की तरह थर–थर काँप रहा था। पुरानी और उजड़ी बाँस–फूस की झोंपड़ियों में अंधकार और सन्नाटे का सम्मिलित साम्राज्य! अँधेरा और निस्तब्धता!

अँधेरी रात चुपचाप आँसू बहा रही थी। निस्तब्धता करुण सिसकियों और आहों को बलपूर्वक अपने हृदय में ही दबाने की चेष्टा कर रही थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। पृथ्वी पर कहीं प्रकाश का नाम नहीं। आकाश से टूटकर यदि कोई भावुक तारा पृथ्वी पर जाना भी चाहता तो उसकी ज्योति और शक्ति रास्ते में ही शेष हो जाती थी। अन्य तारे उसकी भावुकता अथवा असफलता पर खिलखिलाकर हँस पड़ते थे।

सियारों का क्रंदन और पेचक की डरावनी आवाज़ कभी–कभी निस्तब्धता को अवश्य भंग कर देती थी। गाँव की झोंपड़ियों से कराहने और कै करने की आवाज़, 'हरे राम! हे भगवान!' की टेर अवश्य सुनाई पड़ती थी। बच्चे भी कभी–कभी निर्बल कंठों से 'माँ–माँ' पुकारकर रो पड़ते थे। पर इससे रात्रि की निस्तब्धता में विशेष बाधा नहीं पड़ती थी।

कुत्तों में परिस्थिति को ताड़ने की एक विशेष बुद्धि होती है। वे दिन–भर राख के घूरों पर गठरी की तरह सिकुड़कर, मन मारकर पड़े रहते थे। संध्या या गंभीर रात्रि को सब मिलकर रोते थे।

रात्रि अपनी भीषणताओं के साथ चलती रहती और उसकी सारी भीषणता को, ताल ठोककर, ललकारती रहती थी– सिर्फ़ पहलवान की ढोलक! संध्या से लेकर प्रात:काल तक एक ही गति से बजती रहती–'चट्–धा, गिड़–धा,...चट्–धा, गिड़–धा!' यानी 'आ जा भिड़ जा, आ जा, भिड़ जा!'... बीच-बीच में–'चटाक्–चट्–धा, चटाक्–चट्–धा!' यानी 'उठाकर पटक दे! उठाकर पटक दे!!'

यही आवाज़ मृत–गाँव में संजीवनी शक्ति भरती रहती थी।

लुट्टन सिंह पहलवान!

यों तो वह कहा करता था– 'लुट्टन सिंह पहलवान को होल इंडिया भर के लोग जानते

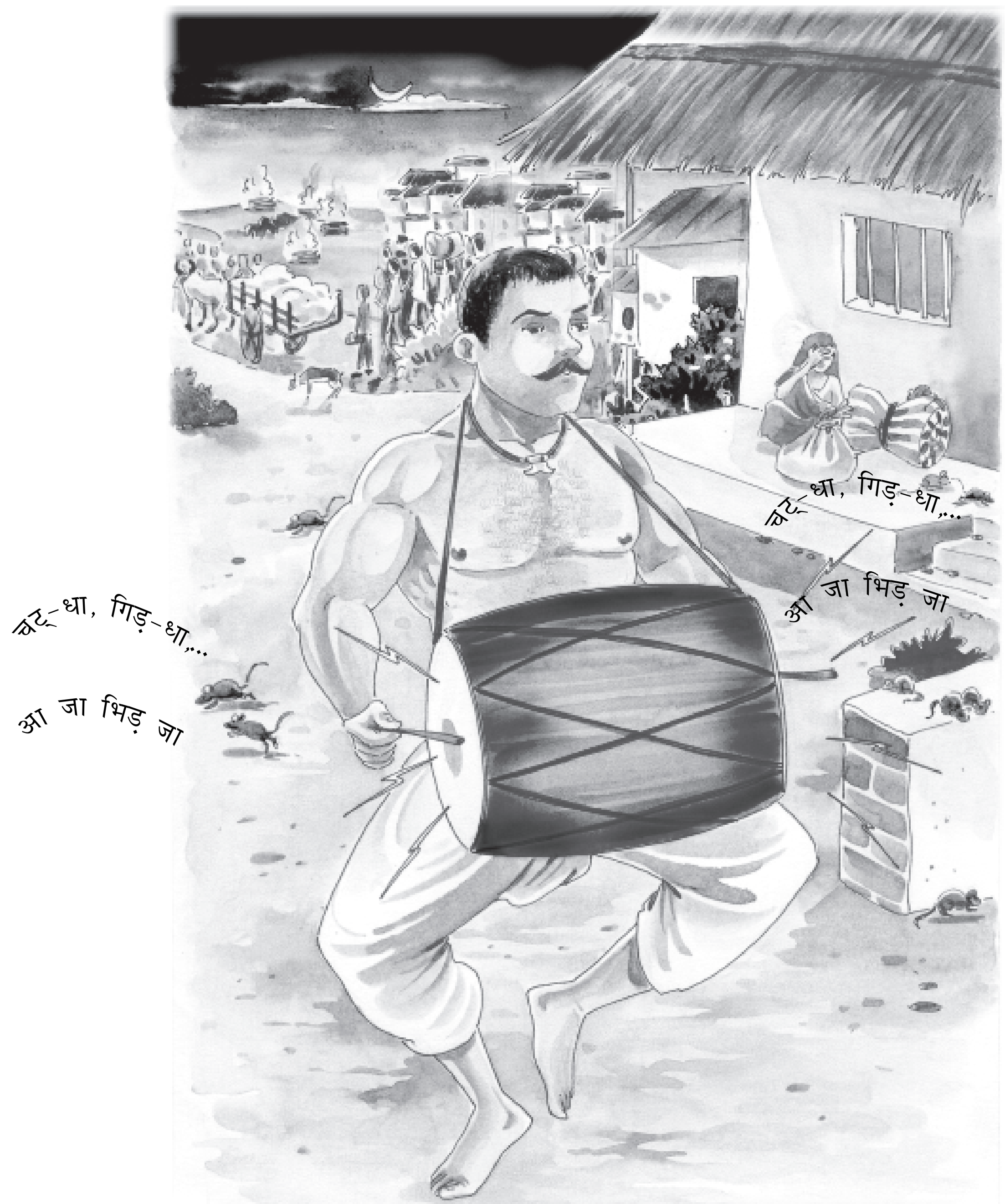
चट्-धा, गिड़-धा,...
आ जा भिड़ जा
चट्-धा, गिड़-धा,...
आ जा भिड़ जा

हैं', किंतु उसके 'होल-इंडिया' की सीमा शायद एक ज़िले की सीमा के बराबर ही हो। ज़िले भर के लोग उसके नाम से अवश्य परिचित थे।

लुट्टन के माता-पिता उसे नौ वर्ष की उम्र में ही अनाथ बनाकर चल बसे थे। सौभाग्यवश शादी हो चुकी थी, वरना वह भी माँ-बाप का अनुसरण करता। विधवा सास ने पाल-पोस कर बड़ा किया। बचपन में वह गाय चराता, धारोष्ण दूध पीता और कसरत किया करता था। गाँव के लोग उसकी सास को तरह-तरह की तकलीफ़ दिया करते थे; लुट्टन के सिर पर कसरत की धुन लोगों से बदला लेने के लिए ही सवार हुई थी। नियमित कसरत ने किशोरावस्था में ही उसके सीने और बाँहों को सुडौल तथा मांसल बना दिया था। जवानी में कदम रखते ही वह गाँव में सबसे अच्छा पहलवान समझा जाने लगा। लोग उससे डरने लगे और वह दोनों हाथों को दोनों ओर 45 डिग्री की दूरी पर फैलाकर, पहलवानों की भाँति चलने लगा। वह कुश्ती भी लड़ता था।

एक बार वह 'दंगल' देखने श्यामनगर मेला गया। पहलवानों की कुश्ती और दाँव-पेंच देखकर उससे नहीं रहा गया। जवानी की मस्ती और ढोल की ललकारती हुई आवाज़ ने उसकी नसों में बिजली उत्पन्न कर दी। उसने बिना कुछ सोचे-समझे दंगल में 'शेर के बच्चे' को चुनौती दे दी।

'शेर के बच्चे' का असल नाम था चाँद सिंह। वह अपने गुरु पहलवान बादल सिंह के साथ, पंजाब से पहले-पहल श्यामनगर मेले में आया था। सुंदर जवान, अंग-प्रत्यंग से सुंदरता टपक पड़ती थी। तीन दिनों में ही पंजाबी और पठान पहलवानों के गिरोह के अपनी जोड़ी और उम्र के सभी पट्ठों को पछाड़कर उसने 'शेर के बच्चे' की टायटिल प्राप्त कर ली थी। इसलिए वह दंगल के मैदान में लँगोट लगाकर एक अजीब किलकारी भरकर छोटी दुलकी लगाया करता था। देशी नौजवान पहलवान, उससे लड़ने की कल्पना से भी घबराते थे। अपनी टायटिल को सत्य प्रमाणित करने के लिए ही चाँद सिंह बीच-बीच में दहाड़ता फिरता था।

श्यामनगर के दंगल और शिकार-प्रिय वृद्ध राजा साहब उसे दरबार में रखने की बातें कर ही रहे थे कि लुट्टन ने शेर के बच्चे को चुनौती दे दी। सम्मान-प्राप्त चाँद सिंह पहले तो किंचित, उसकी स्पर्धा पर मुसकुराया फिर बाज़ की तरह उस पर टूट पड़ा।

शांत दर्शकों की भीड़ में खलबली मच गई– 'पागल है पागल, मरा–ऐं! मरा-मरा!'... पर वाह रे बहादुर! लुट्टन बड़ी सफ़ाई से आक्रमण को सँभालकर निकलकर उठ खड़ा हुआ और पैंतरा दिखाने लगा। राजा साहब ने कुश्ती बंद करवाकर लुट्टन को अपने पास बुलवाया और समझाया। अंत में, उसकी हिम्मत की प्रशंसा करते हुए, दस रुपये का नोट देकर कहने लगे– "जाओ, मेला देखकर घर जाओ!..."

''नहीं सरकार, लड़ेंगे... हुकुम हो सरकार...!''

''तुम पागल हो, ...जाओ!...''

मैनेजर साहब से लेकर सिपाहियों तक ने धमकाया– ''देह में गोश्त नहीं, लड़ने चला है शेर के बच्चे से! सरकार इतना समझा रहे हैं...!!''

''दुहाई सरकार, पत्थर पर माथा पटककर मर जाऊँगा... मिले हुकुम!'' वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता रहा था।

भीड़ अधीर हो रही थी। बाजे बंद हो गए थे। पंजाबी पहलवानों की जमायत क्रोध से पागल होकर लुट्टन पर गालियों की बौछार कर रही थी। दर्शकों की मंडली उत्तेजित हो रही थी। कोई-कोई लुट्टन के पक्ष से चिल्ला उठता था–''उसे लड़ने दिया जाए!''

अकेला चाँद सिंह मैदान में खड़ा व्यर्थ मुसकुराने की चेष्टा कर रहा था। पहली पकड़ में ही अपने प्रतिद्वंद्वी की शक्ति का अंदाज़ा उसे मिल गया था।

विवश होकर राजा साहब ने आज्ञा दे दी– "लड़ने दो!"

बाजे बजने लगे। दर्शकों में फिर उत्तेजना फैली। कोलाहल बढ़ गया। मेले के दुकानदार दुकान बंद करके दौड़े–"चाँद सिंह की जोड़ी-चाँद की कुश्ती हो रही है!!"

'चट्-धा, गिड़-धा, चट्-धा, गिड़-धा...'

भरी आवाज़ में एक ढोल-जो अब तक चुप था–बोलने लगा–

'ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना...'

(अर्थात्-वाह पट्ठे! वाह पट्ठे !!)

लुट्टन को चाँद ने कसकर दबा लिया था।

–"अरे गया-गया!!" दर्शकों ने तालियाँ बजाईं–"हलुआ हो जाएगा, हलुआ.! हँसी-खेल नहीं-शेर का बच्चा है...बच्चू!"

'चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा...'

(मत डरना, मत डरना, मत डरना...)

लुट्टन की गर्दन पर केहुनी डालकर चाँद 'चित्त' करने की कोशिश कर रहा था।

"वहीं दफ़ना दे, बहादुर!" बादल सिंह अपने शिष्य को उत्साहित कर रहा था।

लुट्टन की आँखें बाहर निकल रही थीं। उसकी छाती फटने-फटने को हो रही थी। राजमत, बहुमत चाँद के पक्ष में था। सभी चाँद को शाबाशी दे रहे थे। लुट्टन के पक्ष में सिर्फ़ ढोल की आवाज़ थी, जिसकी ताल पर वह अपनी शक्ति और दाँव-पेंच की परीक्षा ले रहा था–अपनी हिम्मत को बढ़ा रहा था। अचानक ढोल की एक पतली आवाज़ सुनाई पड़ी–

'धाक-धिना, तिरकट-तिना, धाक-धिना, तिरकट-तिना...!!'

लुट्टन को स्पष्ट सुनाई पड़ा, ढोल कह रहा था–"दाँव काटो, बाहर हो जा दाँव काटो, बाहर हो जा!!"

लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, लुट्टन दाँव काटकर बाहर निकला और तुरंत लपककर उसने चाँद की गर्दन पकड़ ली।

"वाह रे मिट्टी के शेर!"

"अच्छा! बाहर निकल आया? इसीलिए तो....।" जनमत बदल रहा था।

मोटी और भौंड़ी आवाज़ वाला ढोल बज उठा–'चटाक्-चट्-धा,चटाक्-चट्-धा...'(उठा पटक दे! उठा पटक दे!!)

लुट्टन ने चालाकी से दाँव और ज़ोर लगाकर चाँद को ज़मीन पर दे मारा।

'धिना-धिना, धिक-धिना!'(अर्थात् चित करो, चित करो!!)

लुट्टन ने अंतिम ज़ोर लगाया–चाँद सिंह चारों खाने चित हो रहा।

'धा-गिड़-गिड़, धा-गिड़-गिड़, धा-गिड़-गिड़,'...(वाह बहादुर! वाह बहादुर!! वाह बहादुर!!)

जनता यह स्थिर नहीं कर सकी कि किसकी जय-ध्वनि की जाए। फलत: अपनी-अपनी इच्छानुसार किसी ने 'माँ दुर्गा की', 'महावीर जी की', कुछ ने राजा श्यामानंद की जय-ध्वनि की। अंत में सम्मिलित 'जय!' से आकाश गूँज उठा।

विजयी लुट्टन कूदता-फाँदता, ताल-ठोंकता सबसे पहले बाजे वालों की ओर दौड़ा और ढोलों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। फिर दौड़कर उसने राजा साहब को गोद में उठा लिया। राजा साहब के कीमती कपड़े मिट्टी में सन गए। मैनेजर साहब ने आपत्ति की–"हें-हें...अरे-रे!" किंतु राजा साहब ने स्वयं उसे छाती से लगाकर गद्गद होकर कहा–"जीते रहो, बहादुर! तुमने मिट्टी की लाज रख ली!"

पंजाबी पहलवानों की जमायत चाँद सिंह की आँखें पोंछ रही थी। लुट्टन को राजा साहब ने पुरस्कृत ही नहीं किया, अपने दरबार में सदा के लिए रख लिया। तब से लुट्टन राज-पहलवान हो गया और राजा साहब उसे लुट्टन सिंह कहकर पुकारने लगे। राज-पंडितों ने मुँह बिचकाया–"हुज़ूर! जाति का ... सिंह...!"

मैनेजर साहब क्षत्रिय थे। 'क्लीन-शेव्ड' चेहरे को संकुचित करते हुए, अपनी शक्ति लगाकर नाक के बाल उखाड़ रहे थे। चुटकी से अत्याचारी बाल को रगड़ते हुए बोले–"हाँ सरकार, यह अन्याय है!"

राजा साहब ने मुसकुराते हुए सिर्फ़ इतना ही कहा–"उसने क्षत्रिय का काम किया है।"

उसी दिन से लुट्टन सिंह पहलवान की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। पौष्टिक भोजन और व्यायाम तथा राजा साहब की स्नेह-दृष्टि ने उसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिए। कुछ वर्षों में ही उसने एक-एक कर सभी नामी पहलवानों को मिट्टी सुँघाकर आसमान दिखा दिया।

काला खाँ के संबंध में यह बात मशहूर थी कि वह ज्यों ही लँगोट लगाकर 'आ-ली' कहकर अपने प्रतिद्वंद्वी पर टूटता है, प्रतिद्वंद्वी पहलवान को लकवा मार जाता है लुट्टन ने उसको भी पटककर लोगों का भ्रम दूर कर दिया।

उसके बाद से वह राज-दरबार का दर्शनीय 'जीव' ही रहा। चिड़ियाखाने में, पिंजड़े और ज़ंजीरों को झकझोर कर बाघ दहाड़ता—'हाँ -ऊँ, हाँ-ऊँ!!' सुनने वाले कहते—'राजा का बाघ बोला।'

ठाकुरबाड़े के सामने पहलवान गरजता— 'महा-वीर!' लोग समझ लेते, पहलवान बोला।

मेलों में वह घुटने तक लंबा चोगा पहने, अस्त-व्यस्त पगड़ी बाँधकर मतवाले हाथी की तरह झूमता चलता। दुकानदारों को चुहल करने की सूझती। हलवाई अपनी दुकान पर बुलाता—"पहलवान काका! ताज़ा रसगुल्ला बना है, ज़रा नाश्ता कर लो!"

पहलवान बच्चों की-सी स्वाभाविक हँसी हँसकर कहता—"अरे तनी-मनी काहे! ले आव डेढ़ सेर!" और बैठ जाता।

दो सेर रसगुल्ला को उदरस्थ करके, मुँह में आठ-दस पान की गिलोरियाँ ठूँस, ठुड्डी को पान के रस से लाल करते हुए अपनी चाल से मेले में घूमता। मेले से दरबार लौटने के समय उसकी अजीब हुलिया रहती—आँखों पर रंगीन अबरख का चश्मा, हाथ में खिलौने को नचाता और मुँह से पीतल की सीटी बजाता, हँसता हुआ वह वापस जाता। बल और शरीर की वृद्धि के साथ बुद्धि का परिणाम घटकर बच्चों की बुद्धि के बराबर ही रह गया था उसमें।

दंगल में ढोल की आवाज़ सुनते ही वह अपने भारी-भरकम शरीर का प्रदर्शन करना शुरू कर देता था। उसकी जोड़ी तो मिलती ही नहीं थी, यदि कोई उससे लड़ना भी चाहता तो राजा साहब लुट्टन को आज्ञा ही नहीं देते। इसलिए वह निराश होकर, लंगोट लगाकर देह में मिट्टी मल और उछालकर अपने को साँड़ या भैंसा साबित करता रहता था। बूढ़े राजा साहब देख-देखकर मुसकुराते रहते।

यों ही पंद्रह वर्ष बीत गए। पहलवान अजेय रहा। वह दंगल में अपने दोनों पुत्रों को लेकर उतरता था। पहलवान की सास पहले ही मर चुकी थी, पहलवान की स्त्री भी दो पहलवानों को पैदा करके स्वर्ग सिधार गई थी। दोनों लड़के पिता की तरह ही गठीले और तगड़े थे। दंगल में दोनों को देखकर लोगों के मुँह से अनायास ही निकल पड़ता—"वाह! बाप से भी बढ़कर निकलेंगे ऐ दोनों बेटे!"

दोनों ही लड़के राज-दरबार के भावी पहलवान घोषित हो चुके थे। अतः दोनों का भरण-पोषण दरबार से ही हो रहा था। प्रतिदिन प्रातःकाल पहलवान स्वयं ढोलक बजा-बजाकर दोनों से कसरत करवाता। दोपहर में, लेटे-लेटे दोनों को सांसारिक ज्ञान की भी शिक्षा देता—"समझे! ढोलक की आवाज़ पर पूरा ध्यान देना। हाँ, मेरा गुरु कोई पहलवान नहीं, यही ढोल है, समझे! ढोल की आवाज़ के प्रताप से ही मैं पहलवान हुआ। दंगल में उतरकर सबसे पहले ढोलों को प्रणाम करना, समझे!"... ऐसी ही बहुत-सी बातें वह कहा करता। फिर मालिक को कैसे खुश रखा जाता है, कब कैसा व्यवहार करना चाहिए, आदि की शिक्षा वह नित्य दिया करता था।

किंतु उसकी शिक्षा-दीक्षा, सब किए-कराए पर एक दिन पानी फिर गया। वृद्ध राजा स्वर्ग सिधार गए। नए राजकुमार ने विलायत से आते ही राज्य को अपने हाथ में ले लिया। राजा साहब के समय शिथिलता आ गई थी, राजकुमार के आते ही दूर हो गई। बहुत से परिवर्तन हुए। उन्हीं परिवर्तनों की चपेटाघात में पड़ा पहलवान भी। दंगल का स्थान घोड़े की रेस ने लिया।

पहलवान तथा दोनों भावी पहलवानों का दैनिक भोजन-व्यय सुनते ही राजकुमार ने कहा-"टैरिबुल!"

नए मैनेजर साहब ने कहा-"हौरिबुल!"

पहलवान को साफ़ जवाब मिल गया, राज-दरबार में उसकी आवश्यकता नहीं। उसको गिड़गिड़ाने का भी मौका नहीं दिया गया।

उसी दिन वह ढोलक कंधे से लटकाकर, अपने दोनों पुत्रों के साथ अपने गाँव में लौट आया और वहीं रहने लगा। गाँव के एक छोर पर, गाँव वालों ने एक झोंपड़ी बाँध दी। वहीं रहकर वह गाँव के नौजवानों और चरवाहों को कुश्ती सिखाने लगा। खाने-पीने का खर्च गाँववालों की ओर से बँधा हुआ था। सुबह-शाम वह स्वयं ढोलक बजाकर अपने शिष्यों और पुत्रों को दाँव-पेंच वगैरा सिखाया करता था।

गाँव के किसान और खेतिहर-मज़दूर के बच्चे भला क्या खाकर कुश्ती सीखते! धीरे-धीरे पहलवान का स्कूल खाली पड़ने लगा। अंत में अपने दोनों पुत्रों को ही वह ढोलक बजा-बजाकर लड़ाता रहा-सिखाता रहा। दोनों लड़के दिन भर मज़दूरी करके जो कुछ भी लाते, उसी में गुज़र होती रही।

अकस्मात गाँव पर यह वज्रपात हुआ। पहले अनावृष्टि, फिर अन्न की कमी, तब मलेरिया और हैज़े ने मिलकर गाँव को भूनना शुरू कर दिया।

गाँव प्रायः सूना हो चला था। घर के घर खाली पड़ गए थे। रोज़ दो-तीन लाशें उठने लगीं। लोगों में खलबली मची हुई थी। दिन में तो-कलरव, हाहाकार तथा हृदय-विदारक रुदन के बावजूद भी लोगों के चेहरे पर कुछ प्रभा दृष्टिगोचर होती थी, शायद सूर्य के प्रकाश में सूर्योदय होते ही लोग काँखते-कूँखते-कराहते अपने-अपने घरों से बाहर निकलकर अपने पड़ोसियों और आत्मीयों को ढाढ़स देते थे-

"अरे क्या करोगी रोकर, दुलहिन! जो गया सो तो चला गया, वह तुम्हारा नहीं था; वह जो है उसको तो देखो।"

"भैया! घर में मुर्दा रखके कब तक रोओगे? कफ़न? कफ़न की क्या ज़रूरत है, दे आओ नदी में।" इत्यादि।

किंतु, सूर्यास्त होते ही जब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों में घुस जाते तो चूँ भी नहीं करते। उनकी बोलने की शक्ति भी जाती रहती थी। पास में दम तोड़ते हुए पुत्र को अंतिम बार 'बेटा!' कहकर पुकारने की भी हिम्मत माताओं की नहीं होती थी।

रात्रि की विभीषिका को सिर्फ़ पहलवान की ढोलक ही ललकारकर चुनौती देती रहती थी। पहलवान संध्या से सुबह तक, चाहे जिस खयाल से ढोलक बजाता हो, किंतु गाँव के अर्द्धमृत, औषधि-उपचार-पथ्य-विहीन प्राणियों में वह संजीवनी शक्ति ही भरती थी। बूढ़े-बच्चे-जवानों की शक्तिहीन आँखों के आगे दंगल का दृश्य नाचने लगता था। स्पंदन-शक्ति-शून्य स्नायुओं में भी बिजली दौड़ जाती थी। अवश्य ही ढोलक की आवाज़ में न तो बुखार हटाने का कोई गुण था और न महामारी की सर्वनाश शक्ति को रोकने की शक्ति ही, पर इसमें संदेह नहीं कि मरते हुए प्राणियों को आँख मूँदते समय कोई तकलीफ़ नहीं होती थी, मृत्यु से वे डरते नहीं थे।

जिस दिन पहलवान के दोनों बेटे क्रूर काल की चपेटाघात में पड़े, असह्य वेदना से छटपटाते हुए दोनों ने कहा था-"बाबा! उठा पटक दो वाला ताल बजाओ!"

'चटाक्-चट-धा, चटाक्-चट-धा...' सारी रात ढोलक पीटता रहा पहलवान। बीच-बीच में पहलवानों की भाषा में उत्साहित भी करता था।-"मारो बहादुर!"

प्रातःकाल उसने देखा-उसके दोनों बच्चे ज़मीन पर निस्पंद पड़े हैं। दोनों पेट के बल पड़े हुए थे। एक ने दाँत से थोड़ी मिट्टी खोद ली थी। एक लंबी साँस लेकर पहलवान ने मुसकुराने की चेष्टा की थी-"दोनों बहादुर गिर पड़े!"

उस दिन पहलवान ने राजा श्यामानंद की दी हुई रेशमी जाँघिया पहन ली। सारे शरीर में मिट्टी मलकर थोड़ी कसरत की, फिर दोनों पुत्रों को कंधों पर लादकर नदी में बहा आया। लोगों ने सुना तो दंग रह गए। कितनों की हिम्मत टूट गई।

किंतु, रात में फिर पहलवान की ढोलक की आवाज़, प्रतिदिन की भाँति सुनाई पड़ी। लोगों की हिम्मत दुगुनी बढ़ गई। संतप्त पिता-माताओं ने कहा-"दोनों पहलवान बेटे मर गए, पर पहलवान की हिम्मत तो देखो, डेढ़ हाथ का कलेजा है!"

चार-पाँच दिनों के बाद। एक रात को ढोलक की आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। ढोलक नहीं बोली। पहलवान के कुछ दिलेर, किंतु रुग्ण शिष्यों ने प्रातःकाल जाकर देखा-पहलवान की लाश 'चित' पड़ी है।

आँसू पोंछते हुए एक ने कहा-"गुरु जी कहा करते थे कि जब मैं मर जाऊँ तो चिता पर मुझे चित नहीं, पेट के बल सुलाना। मैं जिंदगी में कभी 'चित' नहीं हुआ। और चिता सुलगाने के समय ढोलक बजा देना।" वह आगे बोल नहीं सका।

अभ्यास

पाठ के साथ

1. कुश्ती के समय ढोल की आवाज़ और लुट्टन के दाँव-पेंच में क्या तालमेल था? पाठ में आए ध्वन्यात्मक शब्द और ढोल की आवाज़ आपके मन में कैसी ध्वनि पैदा करते हैं, उन्हें शब्द दीजिए।
2. कहानी के किस-किस मोड़ पर लुट्टन के जीवन में क्या-क्या परिवर्तन आए?
3. लुट्टन पहलवान ने ऐसा क्यों कहा होगा कि मेरा गुरु कोई पहलवान नहीं, यही ढोल है?
4. गाँव में महामारी फैलने और अपने बेटों के देहांत के बावजूद लुट्टन पहलवान ढोल क्यों बजाता रहा?
5. ढोलक की आवाज़ का पूरे गाँव पर क्या असर होता था?
6. महामारी फैलने के बाद गाँव में सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य में क्या अंतर होता था?
7. कुश्ती या दंगल पहले लोगों और राजाओं का प्रिय शौक हुआ करता था। पहलवानों को राजा एवं लोगों के द्वारा विशेष सम्मान दिया जाता था–
   (क) ऐसी स्थिति अब क्यों नहीं है?
   (ख) इसकी जगह अब किन खेलों ने ले ली है?
   (ग) कुश्ती को फिर से प्रिय खेल बनाने के लिए क्या-क्या कार्य किए जा सकते हैं?
8. आशय स्पष्ट करें–
   आकाश से टूटकर यदि कोई भावुक तारा पृथ्वी पर जाना भी चाहता तो उसकी ज्योति और शक्ति रास्ते में ही शेष हो जाती थी। अन्य तारे उसकी भावुकता अथवा असफलता पर खिलखिलाकर हँस पड़ते थे।
9. पाठ में अनेक स्थलों पर प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। पाठ में से ऐसे अंश चुनिए और उनका आशय स्पष्ट कीजिए।

पाठ के आसपास

1. पाठ में मलेरिया और हैज़े से पीड़ित गाँव की दयनीय स्थिति को चित्रित किया गया है। आप ऐसी किसी अन्य आपद स्थिति की कल्पना करें और लिखें कि आप ऐसी स्थिति का सामना कैसे करेंगे/करेंगी?
2. ***ढोलक की थाप मृत-गाँव में संजीवनी शक्ति भरती रहती थी***– कला से जीवन के संबंध को ध्यान में रखते हुए चर्चा कीजिए।
3. चर्चा करें– कलाओं का अस्तित्व व्यवस्था का मोहताज नहीं है।

भाषा की बात

1. हर विषय, क्षेत्र, परिवेश आदि के कुछ विशिष्ट शब्द होते हैं। पाठ में कुश्ती से जुड़ी शब्दावली का बहुतायत प्रयोग हुआ है। उन शब्दों की सूची बनाइए। साथ ही नीचे दिए गए क्षेत्रों में इस्तेमाल होने वाले कोई पाँच-पाँच शब्द बताइए-
   - ***चिकित्सा***
   - ***क्रिकेट***
   - ***न्यायालय***
   - ***या अपनी पसंद का कोई क्षेत्र***
2. पाठ में अनेक अंश ऐसे हैं जो भाषा के विशिष्ट प्रयोगों की बानगी प्रस्तुत करते हैं। भाषा का विशिष्ट प्रयोग न केवल भाषाई सर्जनात्मकता को बढ़ावा देता है बल्कि कथ्य को भी प्रभावी बनाता है। यदि उन शब्दों, वाक्यांशों के स्थान पर किन्हीं अन्य का प्रयोग किया जाए तो संभवत: वह अर्थगत चमत्कार और भाषिक सौंदर्य उद्‌घाटित न हो सके। कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं–
   - फिर बाज़ की तरह उस पर टूट पड़ा।
   - राजा साहब की स्नेह-दृष्टि ने उसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिए।
   - पहलवान की स्त्री भी दो पहलवानों को पैदा करके स्वर्ग सिधार गई थी।

   इन विशिष्ट भाषा-प्रयोगों का प्रयोग करते हुए एक अनुच्छेद लिखिए।
3. जैसे क्रिकेट की कमेंट्री की जाती है वैसे ही इसमें कुश्ती की कमेंट्री की गई है? आपको दोनों में क्या समानता और अंतर दिखाई पड़ता है?